सो नांगो निरब्रानु, सो अवधूती आतमा,
जो कटे फास ग्रिचीअ मों, अविद्या आसानु,
अस्तामलु अवले जां, ड्रिसे अनभइ भानु,
सामी सभु जहानु, आहे जंहिंजे आसिरे.

सामी साहब के विचारानुसार वही वस्त्रहीन, नग्न फकीर/साधु है और वही अवधूत है, जिसने अपने गले में पड़ी हुई अविद्या की फाँस (फँदे) को सरलता से काट लिया है (स्वयं को मुक्त कर लिया है।) ऐसा नागा साधु या अवधूत 'हस्तामलक' (वह बात या वस्तु जो सब ओर पूर्ण रूप से स्पष्ट और ज्ञात होकर दिखाई देती हो, जैसे हाथ पर का आँवला) की तरह आत्मिक ज्ञान रूपी सूर्य स्पष्ट रूप से देखता है। अर्थात् उस अंतरात्मा/परमात्मा के दर्शन करता है, जिसके आधार पर यह सृष्टि टिकी हुई है।

परमात्मा को पाने के लिए विभिन्न प्रकार की साधनाएँ की जाती है। साधक भी भिन्न-भिन्न होते हैं। नग्न रहकर, दिगंबर अवस्था में साधना करने वाले हजारों लोग हैं तो अवधूत, योगी बन कर भी साधना करने वालों की कमी नहीं है। सिद्ध मार्ग के योगी पुरुषों को 'अवधूत' कहा गया है। यह मार्ग आदिनाथ (शंकर) निर्मित है। वर्ण और वर्णाश्रम धर्म की अपेक्षा मात्र आत्मा को ही देखने वाले 'अवधूत' कहलाते हैं। पिंड और ब्रह्मांड में व्याप्त शिव/शंकर से एकरूपता स्थापित करना अवधूत या नाथ-संप्रदाय का उद्देश्य होता है। गुरु गोरखनाथ द्वारा स्थापित नाथपंथ में पिंड अर्थात् शरीर की कुंडलिनी शक्ति को जगाकर उसे मस्तिष्क के सहस्रार-चक्र में पहुँचाना एवं शिव-शक्ति की एकरूपता साधने की, साधना को बड़ा महत्व प्राप्त है। संत एकनाथ की लिखी हुई 'अवधूत गीता' के अनुसार जो पुरुष अपने अहंकार/अहंभाव को धो डालता है, वह अवधूत है। वही योगी एवं पवित्र है। वह संकल्प विकल्प से रहित होता है। अवधूत अपने सारे शरीर पर शुद्ध भस्म लगाने वाला, सांसारिक बंधन तोड़कर ब्रह्मानंद में मग्न रहता है।

सामी साहब ने ऐसे ही इच्छारहित अवधूत का वर्णन किया है, जो सांसारिक बंधन तोड़कर प्रभु की तलाश में है और जिसे अपने भीतर ही साक्षात्कार हुआ है।

सो जोगी जाके मन में मुद्रा। राति दिवस न करई निद्रा।।
मन में आसण, मन में रहणा। मन का जप तप मन सूंकहणा।।
मन में खपरा मन में सींगी। अनहद बैन बजावै रंगी।।
पंच परजारि भसम करि मूका। कहै कबीर सो लहसै लंका।।

■